बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 244

इस संकट को न गंवाएं

जुलाई-सितंबर तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में वृद्धि दर पिछली 26 तिमाहियों में न्यूनतम स्तर पर है। यह बात चौंकाती नहीं क्योंकि अधिकांश विश्लेषकों ने पहले ही बुरी खबर की आशंका जता दी थी। यह स्पष्ट है कि यदि सरकार अब से दो महीने बाद यानी बजट तक हालात को संभालती नहीं है तो जल्द सुधार की आशा त्यागनी होगी। अर्थव्यवस्था ऐसे मोड़ पर है जहां से यह किसी भी दिशा में जा सकती है। यह वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के परीक्षण की घड़ी है।

अनेक विश्लेषकों को मोदी सरकार की बढ़ती आर्थिक दिक्कतों में परपीड़ा का आनंद आ रहा है। परंतु इससे आगे देखें तो आलोचकों को भी यह बताना होगा कि सरकार को क्या करना चाहिए? सबसे पहले तो उसे झूठा साहस त्याग कर यह प्रदर्शित करना बंद करना चाहिए कि सब कुछ नियंत्रण में है। देश की समस्याओं की प्राथमिक वजह वैश्विक मंदी नहीं है। यदि ऐसा होता चीन के आंकड़ों (जुलाई-सितंबर में 6 फीसदी की वृद्धि दर) के साथ अंतर इतना नहीं बढ़ा होता। न ही बांग्लादेश 7 फीसदी से अधिक की दर से विकसित हो रहा होता। इस बहस का भी कोई अर्थ नहीं है कि यह केवल धीमापन है या वाकई पूरी तरह मंदी आ गई है। जब चार तिमाहियों में वृद्धि दर 7 फीसदी से घटकर 4.5 फीसदी हो जाए तो यह मंदी ही है।

विश्लेषक हाल तक कह रहे थे कि हालात में जल्दी सुधार आ सकता है लेकिन इसकी आशा मत कीजिए। आंकड़ों की पड़ताल की जाए तो मौजूदा तिमाही के आंकड़े पिछली से कतई बेहतर नहीं हैं और पूरे वर्ष के दौरान वृद्धि दर का स्तर मोदी के सत्ता में आने के बाद से सबसे धीमा रहने वाला है। याद रहे वह दो अंकों की वृद्धि और अच्छे दिन के वादे के साथ सत्ता में आए थे। अब तक सरकार अर्थव्यवस्था का सबसे तेज बढ़ता हिस्सा रही है लेकिन राजकोषीय घाटे का पूरे वर्ष का लक्ष्य सात महीने में पार हो जाने के बाद यह जारी नहीं रहने वाला। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक लगातार निराश कर रहा है। मूलभूत क्षेत्रों के उत्पादन आंकड़ों का भी यही हाल है। बिजली खपत कम हुई है, डीजल खपत का भी यही हाल है, व्यापारिक आंकड़े गिर रहे हैं और विनिर्माण या तो स्थिर है या गिर रहा है। खपत या औद्योगिक मोर्चे पर कोई अच्छी खबर नहीं है।

साप्ताहिक मंथन
टी. एन. नाइनन

हर मंदी में एक चक्रीय तत्त्व होता है और वाहन क्षेत्र की मंदी के खत्म होने में इसके कुछ प्रमाण नजर आ रहे हैं। परंतु सच तो यह है कि बैंक ऋण में सुधार का ज्यादा हिस्सा इस क्षेत्र में नहीं जा रहा। जबकि ऋण के बट्टे खाते जाने की गति बढ़ी है। गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के ऋण प्रवाह में भारी गिरावट आई है। कंपनियां अभी तक अपने बहीखाते दुरुस्त करने में ही लगी हैं। जब तक यह प्रक्रिया पूरी नहीं होती, नये निवेश की आशा करना बेमानी है।

हमें अगले तीन-चार महीने की अवधि के दौरान इन चक्रीय कारकों के असर करने की अपेक्षा करनी होगी लेकिन इस बीच गहन ढांचागत मसलों को हल करने की आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र में खराब उत्पादकता और अपर्याप्त घरेलू मांग की बुनियादी दिक्कत बनी हुई है। इसके लिए कुछ हद तक ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आय का न बढ़ना भी वजह है। सरकार का कर राजस्व आधार दिक्कतों से भरा है और किसी को पता नहीं कि कर क्षेत्र की दिक्कतों को कैसे दूर किया जाए। सेवा निर्यात की मजबूती की वजह से रुपया ऐसे स्तर पर है जहां विनिर्माण निर्यातक निर्यात बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहे हैं। सरकारी क्षेत्र में सुधार की बात करें तो वहां नाकाम हो रही कंपनियों के कर्मचारियों को लेकर मामला अटकता है। अंबानी से रुइया तक और थापर से सुभाष चंद्रा तक एक के बाद एक कारोबारी जिस तरह हथियार डाल रहे हैं उससे देश के नामी उद्यमियों के वृद्धि का वाहक बनने की क्षमता पर ही सवाल खड़े हो गए हैं।

ऐसे में सबसे अच्छी सलाह यही हो सकती है कि यह एक ऐसा संकट है जिसे गंवाया नहीं जाना चाहिए। मोदी सरकार का अब तक का व्यवहार ऐसा रहा है मानो वह आर्थिक मोर्चे पर बुरी खबरों की अनदेखी कर सकती है और अपने राजनीतिक और सामाजिक एजेंडों के साथ आगे बढ़ सकती है। आगे ऐसा जारी नहीं रह सकता। संकटकाल में सरकार लोगों से अपेक्षा कर सकती है कि वे व्यापक हित में कुछ बलिदान करें। कुछ नहीं करने का खतरा यह है कि 6 फीसदी या उससे कम की वृद्धि दर अस्वीकार्य होने के बजाय मानक बन जाती है।

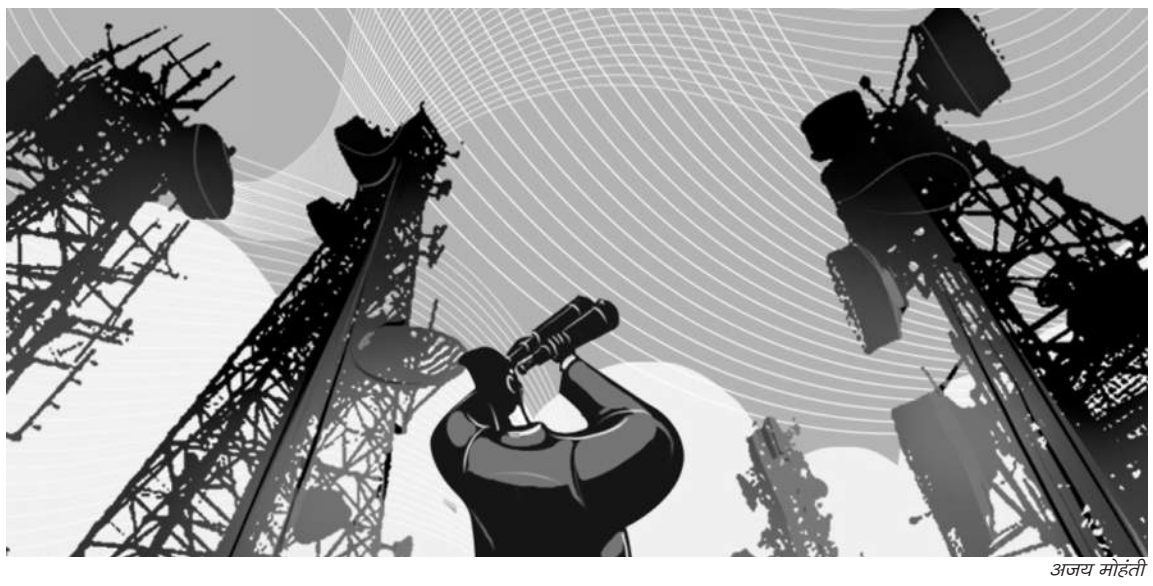

अजय मोहंती

अव्यवस्थित दूरसंचार क्षेत्र की हालत कैसे बिगड़ी?

दूरसंचार क्षेत्र के लिए इस दौर से बाहर निकलने का क्या अब कोई रास्ता बचा है? इसके लिए जरूरत इस बात की है कि हम बकाये कर्ज की समस्या को स्वीकार करें। बता रहे हैं राहुल खुल्लर

दूरसंचार क्षेत्र पर पहले से ही संकट छाया था। सकल राजस्व (जीआर) पर आए उच्चतम न्यायालय के फैसले ने तो उसे घुटनों के बल ला दिया है। सर्वोच्च अदालत का यह फैसला इस बिंदु पर आधारित है कि लाइसेंस समझौता एक अनुबंध है, अनुबंध से जुड़ी शब्दावली जीआर की परिभाषा बाध्यकारी है, संबंधित पक्ष अपनी इच्छा से अनुबंध का हिस्सा बने और पहले निपटाए जा चुके मुद्दों पर मुकदमेबाजी जारी नहीं रह सकती है।

न्यायालय ने फैसला दिया कि जीआर के विवाद को वास्तविक नहीं माना जा सकता है। दूरसंचार कंपनियों ने केवल हल्की आपत्तियां ही उठाई थीं। ब्याज, जुर्माना और जुर्माने पर ब्याज के भुगतान को सही ठहराया गया। न्यायालय के मुताबिक, यह समझौते के अनुरूप था, कोई भी अनुबंध दोनों पक्षों पर स्वैच्छिक एवं बाध्यकारी होता है और उसे अन्यायपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है। इसकी शर्तें भी उचित थीं क्योंकि सरकार प्रभावशाली स्थिति में नहीं थी और न ही उसके पास पूरी तरह असंगत एवं असमान मोलभाव की शक्ति ही थी। साथ ही निश्चित लाइसेंस शुल्क से हटकर राजस्व हिस्सेदारी समझौते की तरफ बढ़ना लाइसेंसधारकों के लिए 'बड़ा वित्तीय संवर्द्धक एवं बेहद लाभप्रद' था।

क्या दूरसंचार कंपनियों के पास 1999 के लाइसेंस आवंटन अनुबंध को लेकर कोई रास्ता रह गया है? इसका जवाब है नहीं। तय लाइसेंस शुल्क काफी अधिक था और उसे चुकाया नहीं गया। अगर वे नए क्षेत्रों की तरफ नहीं बढ़तीं तो निवेश किए गए हजारों करोड़ रुपये भी पूरी तरह गंवा देतीं। क्या अनुबंध से जुड़े पक्षों के पास बातचीत की तुलनात्मक शक्तियां थीं? ऐसा एकदम नहीं था। सच यह है कि दूरसंचार विभाग ने कंपनियों को निशाने पर रखा था। इतिहास से परिचित किसी भी शख्स से इस बारे में पूछ सकते हैं। सवाल है कि क्या अनुबंध ऐच्छिक था और उसकी शर्तें दमनकारी नहीं थीं? इस पर गहरा संदेह है।

लंबे समय से जारी मुकदमे की शुरुआत वर्ष 2003 में ही हो गई थी जब सकल राजस्व की अवधारणा सामने आए हुए 18 महीने भी नहीं बीते थे। उद्योग जगत ने इसे कभी भी उचित नहीं माना। विशेषज्ञ संस्था के तौर पर भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) ने लगातार दूरसंचार कंपनियों के दावों को वजन दिया है। ख्यातिनाम न्यायाधीशों के नेतृत्व वाले दूरसंचार विवाद निपटान एवं अपील पंचाट (टीडीसैट) ने भी बारंबार दूरसंचार कंपनियों के पक्ष में फैसले दिए, वर्ष 2011 में उच्चतम न्यायालय का फैसला आने के बाद भी। यह इस दावे को विश्वसनीयता देता है कि (अ) एक मौलिक विवाद था, (ब) खास बिंदुओं को सकल राजस्व से बाहर रखना सही था।

अंतिम टिप्पणी: वर्ष 2011 तक उच्चतम न्यायालय ने इस मामले को एक प्रामाणिक विवाद की तरह लिया। ऐसे में अगर जुर्माना और जुर्माने पर ब्याज का भुगतान किया जाना है तो क्या उसे 2011 के बाद ही नहीं लिया जाना चाहिए?

दूरसंचार कंपनियों के राजस्व का मसौदा एक पुराना मामला रहा है। इस पर गौर करें: भारत में लगने वाले शुल्क, चाहे लाइसेंस शुल्क या स्पेक्ट्रम उपयोग शुल्क (एसयूसी) हों, दुनिया भर में सबसे अधिक हैं और बाकी किसी देश में तो एसयूसी लगता ही नहीं है। सरकार को राजस्व-साझेदारी समझौते से काफी कुछ हासिल हुआ। अनुमान हैं कि लाइसेंस शुल्क या एसयूसी का शुद्ध वर्तमान मूल्य 1999 में छोड़े जा चुके निश्चित लाइसेंस शुल्क को पार कर चुका है। राष्ट्रीय दूरसंचार नीति 2012 में जिक्र था कि लाइसेंस शुल्क या एसयूसी व्यवस्था को 'तर्कसंगत' बनाया जाएगा। दुख की बात है कि पिछले आठ वर्षों में कुछ भी नहीं किया गया है। ट्राई ने 2013 में एसयूसी में कटौती का सुझाव दिया था लेकिन क्षेत्र को कोई राहत नहीं मिली। लाइसेंस-प्रदाता ने अनुबंध की शर्तें बदल दीं और लाइसेंस शुल्क देने के बावजूद स्पेक्ट्रम की नीलामी होने लगी। सवाल है कि लाइसेंसधारकों के पास नए अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के सिवाय कोई चारा है? स्पेक्ट्रम की नीलामी, वित्तीय दबाव, बढ़ते हुए कर्ज के बदले हालात में ट्राई ने 2015 में सरकार के पास सकल राजस्व निर्धारण से संबंधित सुझाव भेजे। आसान सत्यापन के लिए उन राजस्वों की सूची भी तैयार कर ली गई जिन्हें सकल राजस्व की गणना से बाहर रखा जाना था। लेकिन चार साल बाद भी सरकार ने इस पर कोई निर्णय नहीं लिया है।

अंत में, यह फैसला मुश्किल में डालने वाले कुछ सवाल भी खड़े करता है। अब की वसूली कैसे की जाए? अगर नहीं कर सकते तो फिर केवल कारोबार में लगी कंपनियों से ही बकाया लेना कितना सही है? या फिर उन्हें भी दिवालिया होने की तरफ धकेल दिया जाए? यह तथ्य हालात को अधिक जटिल बनाते हैं कि अब दिल्ली मेट्रो, गेल, पावर ग्रिड और ऑयल इंडिया से भी बकाये की मांग रखी जानी है। बकाया राशि का निर्धारण उनके सकल राजस्व के आधार पर होना है। क्या एक गैस वितरण कंपनी के कुल राजस्व को उसकी दूरसंचार देनदारी तय करने का आधार बनाया जाना चाहिए? ट्राई की 2015 की रिपोर्ट में भी इस समस्या का जिक्र था। अगर इन कंपनियों पर बकाया राशि (अनुमानित तौर पर 2 लाख करोड़ रुपये) को हटा लिया जाता है तो क्या वह संभावित क्षति नहीं है? और अगर यह रकम वसूली जाती है तो क्या ये कंपनियां भी दिवालिया होने के कगार पर आ जाएंगी?

सरकार की राजकोषीय लिप्सा एवं नीतिगत निष्क्रियता ने भारत को इस मुकाम पर ला खड़ा किया है। गैर-कर राजस्व श्रेणी में लाइसेंस शुल्क राजस्व का हिस्सा सबसे अधिक होता था (जब तक रिजर्व बैंक के अधिशेष या रिजर्व में न चला जाए)। सार्वभौम सेवा दायित्व कोष (यूएसओएफ) के पैसे का इस्तेमाल कभी भी सार्वभौम सेवा के लिए नहीं किया गया था, अधिकतर इस्तेमाल बजटीय कमी की भरपाई करने में होता था। वर्ष 2012 के विवादास्पद 2जी स्पेक्ट्रम मामले में आए निर्णय ने भी दूरसंचार विभाग में निर्णय लेने के स्तर पर पंगुता की स्थिति पैदा की। इस फैसले के बाद मंत्रालय के अधिकारी डरे हुए थे और अब भी स्थिति ऐसी ही है। चेतावनी देने वाले सभी संकेतों के बावजूद उनकी उदासीन निष्क्रियता बनी रही।

फिर, क्या आगे कोई राह दिख रही है? पहली एवं सबसे जरूरी बात, हमें यह बात स्वीकार करनी होगी कि हम कर्ज चुकाने की क्षमता की समस्या से जूझ रहे हैं। दूरसंचार कंपनियों पर एजीआर के तौर पर बकाया 1.47 लाख करोड़ रुपये का बोझ काफी बड़ा है। छिटपुट जोड़-तोड़ से काम नहीं चलेगा। हमें ये काम करने होंगे। पहला, ट्राई के जनवरी 2015 में दिए गए सुझावों को स्वीकार करें और सकल राजस्व की गणना से बाहर रखे जाने वाले शुल्कों को तय करें। दूसरा, लाइसेंस शुल्क एवं एसयूसी की दरों को घटाकर क्रमशः पांच फीसदी एवं दो फीसदी करें। तीसरा, जुर्माने एवं जुर्माने पर लगे ब्याज को माफ कर दें क्योंकि यह शुल्क अपने-आप में अनुचित है। अगर ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कम-से-कम इस बकाये को 2011 से ही लागू करें। चौथा, दूरसंचार उद्योग में कीमत को लेकर जारी जंग बंद हो। ट्राई को इस स्थिति तक मामला पहुंचने ही नहीं देना चाहिए था। कॉल एवं डेटा सेवाओं के लिए न्यूनतम कीमत तय की जाए।

जब एक फैसले का अर्थव्यवस्था पर इतना दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है तो सर्वोच्च न्यायालय खुद भी इस निर्णय की समीक्षा कर सकता है। इस लेखक की विनम्र राय है कि लेख में पेश कई बिंदुओं को अदालत के समक्ष रखा ही नहीं गया, अन्यथा फैसला कुछ और हो सकता था।

(लेखक भारतीय दूरसंचार नियामक ट्राई के पूर्व अध्यक्ष हैं)

राजनीति में सही समय पर सही कदम की अहमियत

सियासी हलचल
आदिति फडणीस

हिंदी में यह कहावत काफी मशहूर है कि 'चौबे गए छब्बे बनने, दूबे बनकर लौट आए'। यानी अपनी औकात से बढ़कर काम करने वाले शख्स की हालत पहले से भी बुरी हो जाती है। जहां तक महाराष्ट्र प्रकरण का सवाल है तो इसमें कई विजेता हैं जिनमें से कुछ लोगों को इतना मिल गया है जिसके बारे में उन्होंने शायद ही सोचा हो या उसकी चाहत रखी हो। लेकिन सबसे ज्यादा चिंता करने की जरूरत इस खेल में हारने वालों को है।

नारायण राणे एक निष्ठावान शिवसैनिक हुआ करते थे जिन्हें खुद बाल ठाकरे ने महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पद की कुर्सी पर बिठाया था। वह 'साहेब' की इज्जत करते थे लेकिन पार्टी के भीतर उद्धव ठाकरे के उदय को बर्दाश्त नहीं कर पाए। राणे ने कोंकण क्षेत्र में शिवसेना को खड़ा करने और उसे मजबूती देने में अहम भूमिका निभाई थी। जब उद्धव को शिवसेना का कार्यकारी अध्यक्ष नामित किया गया तो राणे काफी दुखी हो गए और वर्ष 2005 में पार्टी छोड़ दी। उनकी विदाई इतनी कड़वी कि बालासाहेब से आखिरी बार मिलने की इच्छा होते हुए भी वह मातोश्री जाने का साहस नहीं जुटा सके। उन्हें आशंका थी कि ठाकरे परिवार के बाकी सदस्य न जाने कैसा बरताव करेंगे। ऐसे में राणे ने शिवसेना से अलग होने के छह महीने बाद कांग्रेस की सदस्यता ले ली और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (राकांपा) की पेशकश ठुकरा दी। उस समय उन्होंने शपथ ली थी कि वह 'अपनी बाकी जिंदगी कांग्रेस के आदर्शों एवं तिरंगे का सम्मान अक्षुण्ण रखने में लगाएंगे।' राणे के कांग्रेस से जुड़ने की शर्त यह थी कि उन्हें छह महीने के भीतर मुख्यमंत्री बना दिया जाएगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि 10 वर्षों तक किसी तरह कांग्रेस में रहने के बाद राणे ने अपनी शपथ भुला दी और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) से जुड़ने की देवेंद्र फडणवीस की पेशकश पर हामी भर दी। लेकिन राणे को नहीं पता था कि इसे शिवसेना इतना बड़ा मुद्दा बना देगी। शिवसेना ने भाजपा को साफ-साफ बोल दिया कि अगर फडणवीस राणे को अपनी पार्टी में शामिल कराते हैं तो वह गठबंधन सरकार से समर्थन वापस ले लेगी। इस धमकी का असर यह हुआ कि फडणवीस ने फौरन अपने कदम खींच लिए। फिर राणे ने 2017 में महाराष्ट्र स्वाभिमान पक्ष नाम से अपनी एक पार्टी बना ली। वक्त बीतने के साथ फडणवीस ने भी शिवसेना के सामने खड़े होने का साहस जुटाया और एक बार फिर राणे को न्योता दे दिया। एक बार अपने हाथ जला चुके राणे ने भाजपा के साथ जुड़ना स्वीकार कर लिया और राज्यसभा के सदस्य बना दिए गए। अगर राणे ने उद्धव के नेतृत्व को उस समय स्वीकार कर लिया होता तो आज वह कहां होते?

इसी तरह अजित पवार भी अपने चाचा शरद पवार के मनमुताबिक चलने से उकता चुके थे। पिछले कई सालों से उनके मन में ऐसे भाव उठ रहे थे। इसमें सबसे ताजा मामला विधानसभा चुनावों के पहले का है जब अजित राकांपा की चुनावी सभाओं में पार्टी के झंडे के साथ छत्रपति शिवाजी की तस्वीर वाला भगवा झंडा भी लगाना चाह रहे थे। लेकिन शरद पवार ने सार्वजनिक तौर पर इसे खारिज करते हुए कह दिया कि यह अजित की निजी राय है। चुनावी नतीजे आने के बाद बदले हुए हालात में शरद पवार ने अजित को यह भरोसा दिया था कि उद्धव की अगुआई में बनने जा रही सरकार में उन्हें उप मुख्यमंत्री का पद मिलेगा। इसके बावजूद अजित ने यह सोचा कि वह सौदेबाजी के मामले में अपने चाचा को मात दे सकते हैं, लिहाजा वह भाजपा के पास ऐसी पेशकश लेकर गए जिसे वह नकार नहीं सकी। अजित को भाजपा के खेमे में भी उप मुख्यमंत्री पद दिया जाना था। लेकिन चंद दिनों के ही भीतर देखिए क्या हो गया।

विधानसभा चुनाव के पहले राकांपा के इतने लोगों ने भाजपा से नाता जोड़ा था कि भाजपा अध्यक्ष अमित शाह यह व्यंग्य कर गए कि शरद पवार और कांग्रेस के पृथ्वीराज चव्हाण को छोड़कर हर कोई भाजपा में शामिल होने के लिए लाइन में खड़ा है। अब ये सारे लोग कहां हैं?

कांग्रेस की मुंबई इकाई के पूर्व अध्यक्ष संजय निरुपम भी पहले शिवसेना में रह चुके हैं। निरुपम ने शिवसेना से कांग्रेस के हाथ मिलाने की चर्चा तेज होने पर हर मंच से खुलकर विरोध किया। जब फडणवीस ने सुबह-सवेरे शपथ ली तो निरुपम यह कहने से खुद को नहीं रोक पाए कि 'मैंने तो पहले ही कहा था'। लेकिन बहुत जल्द हालात बदल गए। अगर निरुपम ने उस समय शांति दिखाई होती तो वह आज महाराष्ट्र सरकार में कहीं-न-कहीं होते।

उनकी तरह कुछ और लोग भी हैं। राधाकृष्ण विखे पाटील को कांग्रेस ने पिछली विधानसभा में विपक्ष का नेता बनाया था। लेकिन जब उनके बेटे ने भाजपा का दामन थाम लिया तो वह भी बेटे के साथ चले गए। पाटील ने भाजपा के लिए खुलकर प्रचार किया। कांग्रेस से उनके अलग होने का फायदा बालासाहेब थोरात को मिला। अहमदनगर से ताल्लुक रखने वाले थोरात के बारे में विधायक कहते हैं कि 'उनके पास किसी कछुए जैसा ही करिश्मा' है। लेकिन आज हंसी थोरात के चेहरे पर ही दिख रही है। आठवीं बार विधायक बने थोरात ने नई सरकार में मंत्री पद संभाल लिया है।

अंत में उन लोगों की बात करते हैं जो सबसे अधिक चतुर निकले। इनमें सबसे ऊपर प्रियंका चतुर्वेदी हैं जो एकदम सही समय पर सही जगह मौजूद रहीं। प्रियंका ने जब कांग्रेस छोड़ी थी तब वह उसकी प्रमुख प्रवक्ता एवं चेहरा हुआ करती थीं। लेकिन वह चुनावों के ऐन पहले शिवसेना में शामिल हो गईं और इस समय वह विजेता पक्ष में हैं।

कोई नहीं बता सकता है कि यह सरकार कितना टिकेगी या तीनों गठबंधन दलों के बीच भविष्य में कैसे संबंध विकसित होंगे? लेकिन यह चुनाव हमें बताता है कि भले ही वफादारी एवं निष्ठा का फल मिलता है लेकिन इसमें सही समय का होना सबसे जरूरी है।

कानाफूसी

सशुल्क स्वच्छता अध्ययन

मध्य प्रदेश के सबसे अधिक आबादी वाले शहर इंदौर को 2019 में तीसरी बार देश का सबसे स्वच्छ शहर घोषित किया जा चुका है। परंतु उसका यही दर्जा इंदौर नगर निगम के अधिकारियों के लिए मुसीबत बन गया है। दरअसल केंद्र सरकार के निर्देश के बाद विभिन्न राज्यों के अधिकारी इंदौर जाकर वहां के स्वच्छता मॉडल का अध्ययन करते हैं। परंतु स्थानीय अधिकारियों का कहना है कि इसके चलते उनका रोजमर्रा का कामकाज प्रभावित होता है। इससे निजात पाने के लिए इंदौर नगर निगम ने स्वच्छता का अध्ययन करने वालों पर 7,000 रुपये प्रति व्यक्ति की दर से शुल्क लगाना शुरू कर दिया है। पिछले दिनों निगम ने तीन राज्यों के ऐसे ही दस्तों से 1.33 लाख रुपये की राशि जमा की।

नाम बना मुसीबत

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में रहने वाले एक किसान अमिताभ बच्चन के लिए उसका नाम मुसीबत बन गया है। राज्य के कृषि विभाग में उनका यही नाम दर्ज है और उन्होंने प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना का लाभ लेने के लिए आवेदन किया है। इस योजना के तहत किसानों को तीन मासिक किस्तों में 6,000 रुपये का भुगतान किया जाता है। हालांकि उनके दावे का सत्यापन किया गया था और उसे सही पाया गया था लेकिन उनके नाम के कारण उनकी पहली ही किस्त खाते में नहीं पहुंच सकी। परंतु अब उन्हें यह आश्वासन दिया गया है कि उनकी लंबित किस्त अगले महीने उनके खाते में पहुंच जाएगी।

आपका पक्ष

एड्स से बचाव के लिए जागरूकता

सरकारी प्रयासों के बावजूद एड्स को आज भी सामाजिक कलंक के तौर पर देखा जाता है। घर-परिवार और समाज से लेकर कार्यस्थल पर एड्स मरीजों के साथ भेदभाव किया जाता है। एचआईवी संक्रमित होना जीवन का अंत नहीं हैं क्योंकि वह व्यक्ति भी चिकित्सीय मदद से लंबे समय तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकता है। एंटी-रेट्रोवायरल थेरेपी (एआरटी) अगर समय पर शुरू कर दी जाए तो इस बीमारी के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। भारत ने एचआईवी संबंधी आंकड़े देने वाले इन व्यापक स्रोतों का इस्तेमाल एड्स संबंधी कार्यक्रमों के निर्धारण में किया है ताकि एचआईवी की रोकथाम एवं इसके उपचार के उपायों से होने वाले प्रभावों की जानकारी प्राप्त की जा सके। एड्स पर संयुक्त राष्ट्र के

एड्स के प्रति जागरूकता के लिए 1 दिसंबर को विश्व एड्स दिवस मनाया जाता है

अनुमान यह दिखाते हैं कि पूरा विश्व एचआईवी संक्रमण को फैलने से रोकने का प्रयास कर रहा है ताकि इस महामारी को जड़ से मिटाया जा सके। विगत 10 वर्षों में इस दिशा में सराहनीय प्रयास किए गए हैं। भारत एड्स उन्मूलन की दिशा में लगातार कठिन प्रयास कर रहा है। इस बीमारी ने देश की एक बड़ी आबादी को जकड़ रखा है। एचआईवी से संबंधित मामलों को पूर्ण रूप से खत्म किए जाने के प्रयास किए जा रहे हैं एवं पिछले कुछ वर्षों में भारत ने इस प्रयास में कुछ सफलता भी पाई है। भारत को पूर्णतः एड्स मुक्त होने में अभी काफी समय लगेगा। सरकार और अंतरराष्ट्रीय कोशिश व वैज्ञानिक विकास के बावजूद आज भी एचआईवी एड्स एक लाइलाज बीमारी के रूप में बड़ी चुनौती बन चुकी है। सही जानकारी और उचित सावधानियां बचाव के तरीके हैं। यह संक्रमण हम सबका साझा दुश्मन है और इसे अकेले खत्म नहीं किया जा सकता है। हम सभी को साथ मिलकर पहल करनी होगी जिससे एड्स मरीजों को जिंदगी जीने की राह दिखाई पड़े।

नृपेंद्र अभिषेक, छपरा

एड्स से बचाव ही एकमात्र इलाज

विश्व एड्स दिवस प्रति वर्ष 1 दिसंबर को पूरे विश्व में एड्स के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए मनाया जाता है। यह एक ऐसी बीमारी है जो विश्व में भयंकर खतरे के रूप में फैली हुई है। विश्व के वैज्ञानिक इस बीमारी से छुटकारा पाने के उपचार के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहें हैं। एड्स सभी बीमारियों से बड़ी बीमारी है क्योंकि हर बीमारी का इलाज संभव है लेकिन एड्स का लगभग असंभव है। उम्मीद है कि शीघ्र ही वैज्ञानिक इस जानलेवा बीमारी का निदान खोज लेंगे जिससे जल्द ही विश्व को एड्स मुक्त किया जा सकेगा। हाल ही में भारत की कुछ कंपनियों ने एड्स की कुछ ऐसी दवाइयां विकसित की हैं जिनसे रोगियों की पीड़ा काफी कम हो सकती है।

अनु मिश्रा, सीवान

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।